

हिंसा का प्रश्न

हमें हिंसा तथा संघर्ष की सभी अभिव्यक्तियों को एक निष्पक्ष मन से देखना चाहिए, अर्थात् एक ऐसे मन से जो किसी राष्ट्र, जाति अथवा विचार-प्रणाली के साथ अपना तादात्म्य नहीं करता, वरन् जो सत्य है उसका पता लगाने का प्रयत्न करता है। दूसरों के आदेशों और विचारों से बिना प्रभावित हुए - ये चाहे सरकार अथवा किसी विशेषज्ञ अथवा विद्वान के ही क्यों न हों - किसी वस्तु को साफ-साफ देखने में अत्यन्त आनन्द है। जब हम वास्तव में यह समझ लेते हैं कि राष्ट्र -भक्ति मानव-सुख के लिए बाधा है तो हमें इस भ्रामक संवेग के विरोध में स्वयं अपने भीतर संघर्ष नहीं करना पड़ता; यह हमसे सदा के लिए विदा हो जाता है।

राष्ट्रवाद, राष्ट्रप्रेम की भावना, वर्ग और जाति की चेतना, आदि सभी 'स्व' की प्रक्रियाएँ हैं और इसलिए विघटनकारी हैं। आखिर एक राष्ट्र है क्या? केवल व्यक्तियों का एक समूह जो आर्थिक एवं आत्मसुरक्षा के कारणों से एक साथ रहता है। भय और परिग्रही आत्म-सुरक्षा से 'मेरा देश' का विचार जन्म लेता है, उसकी सीमाएँ और कर-निर्धारण के क्षेत्र निश्चित होते हैं, और इस प्रकार मनुष्य की एकता एवं भ्रातृत्व को असम्भव बना दिया जाता है।

कुछ प्राप्त करने तथा उसे सुरक्षित रखने की इच्छा, अपने से बड़ी किसी वस्तु के साथ तादात्म्य की लालसा, राष्ट्रवाद की भावना को जन्म देती है; और राष्ट्रवाद युद्ध उत्पन्न करता है। सभी देशों में सरकारें, संगठित धर्म का प्रोत्साहन पाकर, राष्ट्रवाद और उसकी अलगाववादी भावनाओं को बनाए रखती हैं। राष्ट्रवाद एक बीमारी है, वह विश्व एकता कभी स्थापित नहीं कर सकती। हम स्वास्थ्य को बीमारी के द्वारा नहीं प्राप्त कर सकते, हमें पहले उस बीमारी से अपने को विमुक्त करना होगा।

चूँकि हम राष्ट्रवादी हैं इसलिए हम अपने सम्प्रभुराज्य की, अपने विश्वासों की और अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए तैयार हैं, और इसीलिए यह आवश्यक है कि हम निरन्तर अस्त्र-शस्त्र से सज्जित रहें। मनुष्य के जीवन की अपेक्षा सम्पत्ति और विचार हमारे लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए हैं, इसलिए हमारे और दूसरों के बीच निरन्तर संघर्ष और हिंसा बनी रहती है। अपने देश की सम्प्रभुता को सुरक्षित करने के लिए हम अपने बच्चों को नष्ट कर रहे हैं; राज्य की उपासना करके, जो कि और कुछ नहीं हमारा ही प्रक्षेपण है, हम स्वयं अपने ही परितोष के लिए अपने बच्चों का बलिदान कर रहे हैं। राष्ट्रवाद और सम्प्रभु सरकारें युद्ध के कारण भी हैं और साधन भी।

हमारी वर्तमान सामाजिक संस्थाएँ विश्व-संघ में विकसित नहीं हो सकतीं, क्योंकि उनका आधार ही दोषयुक्त है। संसदेँ और शिक्षा की प्रणालियाँ जो कि राष्ट्रीय प्रभुत्व एवं समूह के महत्त्व को गौरव देती हैं, कभी भी युद्ध का अन्त नहीं कर सकेंगी। व्यक्तियों के पृथक-पृथक समूह अपने-अपने शासकों एवं शासितों दोनों के साथ युद्ध का कारण बने हुए हैं। जब तक मनुष्य और मनुष्य के बीच के वर्तमान सम्बन्धों में हम मौलिक परिवर्तन नहीं ला पाते, सारे प्रयास अनिवार्यतः भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे और विनाश तथा पीड़ा का साधन बन जाएँगे; जब तक हिंसा और उत्पीड़न है, प्रचार और धोखेबाजी है, तब तक मनुष्यों के बीच भाईचारा नहीं हो सकता।

शिक्षा यदि केवल विलक्षण क्षमता वाले इन्जीनियर, प्रतिभाशाली वैज्ञानिक, सक्षम प्रशासक और कुशल कारीगर बनाने के लिए है, तो वह उत्पीड़क और उत्पीड़ित को कभी भी एक साथ नहीं ला सकेगी; और हमने देख लिया है कि हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली मनुष्यों के बीच बैर, घृणा उत्पन्न करने वाले अनेक कारणों को जीवित रखती है, उन सामूहिक हत्याओं को नहीं रोक सकती जो देश के नाम पर और ईश्वर के नाम पर की गई हैं।

दूसरी ओर संगठित धर्म भी, जिनकी अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक प्रभुसत्ता है, मनुष्य के लिए शान्ति नहीं ला सकते, क्योंकि वे भी तो हमारे अज्ञान और भय के, हमारी कल्पना और हमारे अहंता के, परिणाम हैं।

इस जीवन में अथवा इसके पश्चात भी सुरक्षित होने की लालसा में हम ऐसी संस्थाओं और विचार-प्रणालियों को जन्म देते हैं जो इस सुरक्षा का आश्वासन देती है; परन्तु जितना अधिक हम सुरक्षा के लिए संघर्ष करेंगे, उतनी ही कम वह हमें उपलब्ध होगी। सुरक्षित होने की लालसा केवल विभाजन को जन्म देती है और द्वेष बढ़ाती है। यदि हम इस सत्य को गहराई से अनुभव करें तथा उसको समझें - केवल शाब्दिक अथवा बौद्धिक रूप से ही नहीं वरन अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व से - तो अपने चारों ओर के वर्तमान विश्व से हम अपने सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन लाना आरम्भ कर देंगे; और केवल तभी एकता और भ्रातृत्व की उपलब्धि की कोई सम्भावना है।

हममें से अधिकांश व्यक्ति सभी प्रकार के भय से पीड़ित रहते हैं और स्वयं अपनी सुरक्षा के विषय में बड़े चिंतित रहते हैं। हमें आशा रहती है कि किसी रहस्यमय चमत्कार से युद्धों का अन्त हो जाएगा और बराबर हम दूसरे राष्ट्रों पर यह आरोप लगाते रहते हैं कि वे युद्ध को भड़का रहे हैं, उसी तरह से जैसे वे उसके लिए हमारे ऊपर आरोप लगाते हैं। यद्यपि युद्ध समाज के लिए स्पष्टतया बड़ा हानिकारक है, परन्तु हम युद्ध की तैयारी करते हैं और युवकों में सैनिक भावना का विकास करते हैं।

परन्तु क्या शिक्षा में सैनिक प्रशिक्षण का कोई स्थान है? यह सब इस पर निर्भर करता है कि हम अपने बच्चों को किस प्रकार का मनुष्य बनाना चाहते हैं। यदि हम चाहते हैं कि वे कुशल हत्यारे बनें तो सैनिक प्रशिक्षण अनिवार्य है। यदि हम उन्हें अनुशासित करना चाहते हैं और उनके मन को नियंत्रित करना चाहते हैं, यदि हमारा लक्ष्य उनको राष्ट्रप्रीयतावादी बनाना है और इस प्रकार सम्पूर्ण समाज के प्रति गैर-जिम्मेदार बनाना है, तो सैनिक प्रशिक्षण इसके लिए एक अच्छा मार्ग है। यदि हम मृत्यु और विनाश ही चाहते हैं तो स्पष्ट है कि सैनिक प्रशिक्षण आवश्यक है। सेनापतियों का तो यह कार्य ही है कि वे युद्ध की योजना बनाएँ तथा उन्हें कार्यान्वित करें और यदि हमारा यही अभिप्राय है कि अपने और अपने पड़ोसियों के बीच हम निरन्तर युद्ध बनाए रखें तो हर प्रकार से ठीक ही है कि हमारे पास अधिकाधिक सेनापति हों।

यदि हम इसीलिए जीवित हैं कि हमारे अन्दर और दूसरों के साथ कभी न अन्त होने वाली कलह बनी रहे, यदि हमारी इच्छा रक्तप्रात और कष्ट बनाए रखने की है, तो अधिकाधिक सैनिक होने चाहिए, अधिकाधिक राजनीतिज्ञ होने चाहिए, अधिकाधिक शत्रुता होनी चाहिए - यही है जो वास्तव में हो रहा है। आधुनिक सभ्यता हिंसा पर आधारित है और इसीलिए मौत सामने है। जब तक हम फौज की उपासना करते हैं,

हिंसा हमारी जीवन पद्धति रहेगी। परन्तु यदि हम शान्ति चाहते हैं, यदि हम मनुष्यों में सम्बन्ध चाहते हैं, चाहे वे ईसाई हों अथवा हिन्दू, रूसी हों अथवा अमरीकी, यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे संपूर्ण मनुष्य बनें तो सैनिक प्रशिक्षण पूर्णतया एक बाधा है। उस पर चलना गलत मार्ग पर चलना है।

यह विश्वास भी घृणा तथा कलह का प्रमुख कारण है कि कोई विशेष जाति अथवा वर्ग दूसरे की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। बच्चे को न तो वर्ग की ही कोई चेतना होती है और न जाति की। घर का अथवा स्कूल का अथवा दोनों का परिवेश ही है जो उसमें पृथक्ता की भावना उत्पन्न करता है। स्वयं अपने में उसे इसकी चिन्ता नहीं होती कि उसके खेल का साथी नीग्रो है अथवा यहूदी है, ब्राह्मण है या गैर-ब्राह्मण है; परन्तु समस्त समाज-संरचना का प्रभाव उसके मन पर निरन्तर अपनी छाप डाल रहा है, उसे प्रभावित कर रहा है तथा उसे रूप प्रदान कर रहा है।

यहाँ पुनः समस्या का सम्बन्ध बच्चे से नहीं वरन प्रौढ़ों से है, जिन्होंने अलगाववाद एवं भ्रामक मूल्यों का एक अर्थहीन परिवेश बनाया है।

मनुष्यों के बीच भेदभाव खड़ा करने का वास्तविक आधार क्या है? हमारे शरीर की रचना और हमारा रंग भिन्न हो सकता है, हमारे चेहरे असमान हो सकते हैं, परन्तु अन्दर से हम बहुत कुछ एक समान हैं: अहंकार, महत्वाकांक्षाएँ, द्वेष, हिंसा, काम-भावना, सत्ता-लोलुपता आदि-आदि। अपने ऊपर लगे हुए नाम के लेबिलों को हटाइए और हम बिल्कुल नग्न हैं; परन्तु हम उस नग्नता का सामना नहीं करना चाहते और इसीलिए हम लेबिलों पर जोर देते हैं जो इसका सूचक है कि हम कितने अपरिपक्व, वास्तव में कितने बचकाने हैं।

बच्चे का पूर्वाग्रह से मुक्त होकर विकास हो सके, इसमें बालक की सहायता करने के लिए व्यक्ति को पहले अपने अन्दर के सारे पूर्वाग्रहों को तोड़ना पड़ता है और तब अपने परिवेश के पूर्वाग्रह को तोड़ना पड़ता है- परिवेश के पूर्वाग्रह को तोड़ने का अर्थ इस विचार-शून्य समाज की संरचना को तोड़ देना है जिसे हमने बनाया है। घर में हम बालक से कह सकते हैं कि अपने वर्ग तथा जाति की चेतना कितनी मूर्खतापूर्ण बात है और सम्भवतः वह हमसे सहमत भी होगा; परन्तु जब वह स्कूल जाता है और दूसरे बालकों के साथ खेलता है तो वह अलगावकारी भावनाओं से दूषित हो जाता है। यही बात दूसरे प्रकार से भी हो सकती है: घर परम्परावादी तथा संकीर्ण विचारोंवाला हो सकता है और स्कूल ऐसा न होकर व्यापक प्रभाव वाला हो सकता है। दोनों ही स्थितियों में घर और स्कूल के परिवेश के बीच निरन्तर संघर्ष होता है और बालक उन दोनों के बीच फँस जाता है।

बच्चों का सम्यक रूप से विकास करने के लिए, वह इन मूर्खतापूर्ण पूर्वाग्रहों को समझ सके, ऐसी दृष्टि उसमें पैदा हो, ऐसी मदद करने के लिए हमें उसके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना होगा। हमें अनेक प्रकार की परिचर्चाएँ करनी होंगी और उसे अवसर देना होगा कि वह बुद्धिमत्तापूर्ण बातचीत को सुने; उसमें असन्तोष तथा अन्वेषण की भावना का हमें विकास करना होगा - ये भावनाएँ जो उसमें पहले से ही हैं - और इस प्रकार उसकी सहायता करनी होगी कि वह अपने से खोजे कि सत्य क्या है, असत्य क्या है?

सतत अन्वेषण और वास्तविक असन्तोष, ये ही वे चीजें हैं जो सर्जनशील बुद्धि को उत्पन्न करती हैं; परन्तु अन्वेषण तथा असन्तोष को जागरूक बनाए रखना

अत्यधिक कठिन होता है और अधिकांश व्यक्ति यही नहीं चाहते कि उनके बच्चे उस प्रकार की प्रज्ञा को प्राप्त करें, क्योंकि ऐसे व्यक्ति के साथ रहना जो लगातार मान्य मूल्यों के प्रति प्रश्न करता रहता है, बड़ा ही असुविधाजनक होता है।

जब हम छोटे होते हैं तो हम सभी में असन्तोष होता है, परन्तु दुर्भाग्य से हमारा असन्तोष शीघ्र ही मुरझा जाता है, प्रभुसत्ता की जो हम उपासना किया करते हैं उससे और अनुकरण की प्रवृत्तियों द्वारा दबा दिया जाता है। जैसे-जैसे हम प्रौढ़ होते जाते हैं, हम स्थायी रूप से समाज में स्थान प्राप्त करने लगते हैं, हम सन्तुष्ट तथा अनुभवी होने लगते हैं और धीरे-धीरे पतन आरम्भ हो जाता है। चूंकि हम अपने स्थान को सुरक्षित रखना चाहते हैं, इसलिए हम उस समाज का समर्थन करते हैं जो विनाशकारी है, जिसने हमें उस स्थान पर पहुँचाया है और इस प्रकार कुछ मात्रा में सुरक्षा प्रदान की है।

शिक्षा के ऊपर सरकारी नियन्त्रण एक विपत्ति है। विश्व में शान्ति और व्यवस्था की तब तक कोई आशा नहीं है जब तक शिक्षा राज्य अथवा संगठित धर्म की अनुयायी है। फिर भी अधिकाधिक सरकारें बच्चों की तथा उनके भविष्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रही हैं; और यदि कहीं सरकार नियन्त्रण नहीं चाहती तो वहाँ धार्मिक संगठन हैं जो शिक्षा पर नियन्त्रण चाहते हैं।

बालक के मन को संस्कारबद्ध करने का यह प्रयत्न कि वह किसी खास धार्मिक अथवा राजनीतिक विचार-प्रणाली के अनुकूल हो सके, यह मनुष्य-मनुष्य के बीच बैर-भाव उत्पन्न करता है। एक स्पर्धारत समाज में हमें भाईचारा नहीं मिल सकता और किसी प्रकार का सुधार, किसी प्रकार का अधिनायकवाद, किसी प्रकार की शिक्षण-पद्धति भाईचारे को उत्पन्न नहीं कर सकती।

जब तक आप न्यूजीलैंडवासी बने हैं और मैं एक हिन्दू हूँ, मानव एकता के विषय में बात करना मूर्खता है। हम कैसे मनुष्य के रूप में एक साथ मिल सकते हैं यदि आप अपने देश में और हम अपने देश में अपने-अपने धार्मिक पूर्वाग्रहों तथा आर्थिक प्रणालियों को सुरक्षित रखते हैं? जब तक राष्ट्र भक्ति मनुष्य को मनुष्य से पृथक कर रही है और लाखों व्यक्ति एक ओर आर्थिक कठिनाइयों से पीड़ित हैं जब कि दूसरे समृद्ध हैं, तो भ्रातृत्व कैसे सम्भव है? जब हमारे विश्वास हमें विभाजित किए हुए हैं, जब एक समूह का दूसरे समूह पर आधिपत्य है, जब धनी शक्तिशाली हैं तथा निर्धन उसी शक्ति की खोज में लगे हैं, जब भूमि का विषमतापूर्वक वितरण हुआ है और कुछ लोगों के पेट भली-भाँति भरे हैं परन्तु बहुसंख्यक भूखों मर रहे हैं, तो मानव एकता कैसे सम्भव है?

हमारी एक बड़ी कठिनाई यह है कि इन मामलों में हम वास्तव में ईमानदार नहीं हैं और इसका कारण यही है कि हम अधिक परेशान नहीं होना चाहते। हम यही चाहते हैं कि वस्तुएँ वहीं तक बदलें जहाँ तक वे हमारे लिए उपयोगी हों और इसीलिए हमें स्वयं अपने खोखलेपन की तथा क्रूरता की कोई गहरी चिन्ता नहीं है।

क्या हिंसा के द्वारा कभी हम शान्ति पा सकते हैं? क्या शान्ति धीरे-धीरे, कालक्रम की धीमी प्रक्रिया से प्राप्त होगी? निःसन्देह प्रेम प्रशिक्षण अथवा समय की वस्तु नहीं है। पिछले दो युद्ध, मैं समझता हूँ, लोकतन्त्र के लिए लड़े गए; और आज हम एक अधिक व्यापक और अधिक विनाशकारी युद्ध की तैयारी कर रहे हैं और लोग कम स्वतन्त्र हैं। परन्तु यदि ऐसे स्पष्ट अवरोधों को - जैसे प्रभुसत्ता, विश्वास, राष्ट्रवाद

और समस्त पुरोहितवादी व्यवस्था - को उठाकर एक ओर रख दें तो क्या होगा? हम लोग बिना किसी अधिकारवृत्ति के तब मानव-मात्र होंगे, जिनका एक-दूसरे से साक्षात् सम्बन्ध होगा, और तभी सम्भवतः प्रेम और करुणा होगी।

‘शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य’ से
अनुवाद : डॉ. डी. एस. वर्मा